

ध्यान पत्रिका

प्रेरक : डॉ० शुभ्रू नाथ

M.Sc., Ph.D.

जनवरी-2011

वर्ष-21

अंक-1



नव वर्ष 2011 में

समस्त साधकों को अत्याधिक गहराई तक

ज्ञान गंगा में गोता लगाने हेतु

शुभकामनायें ।

प्रकाशक

ध्यान सत्संग सभा

हिसार (हरियाणा), मो. : 09416164702, 09813294171

भक्तवत्सल भगवान्

कस्तूरी कुण्डल बसे, मृग ढूँढे बन माहिं।

ऐसे घट घट में राम हैं, दुनियां देखे नाहिं ॥

एक आर्त भक्त द्वारा प्रभु के सच्चे ध्यान की पराकाष्ठा

एक आर्त पक्षी पेड़ की डाल पर बैठा है। एक ओर पेड़ के नीचे एक शिकारी उस पर निशाना साधे खड़ा है तथा दूसरी ओर पेड़ के ऊपर एक बाज उस पर झपटने को तैयार बैठा है। पक्षी देख रहा है कि अब तो दोनों ओर से मृत्यु निश्चित है। ऐसे में वह पक्षी बड़े करुण स्वर में अंतर्मन की गहराई से भगवान का स्मरण करता है: कि हे प्रभु! अब तो मेरे जीवन की तू ही रक्षा कर सकता है। सच्चे हृदय से की गई करुण पुकार तो भगवान सदा सुनता ही है।

द्रोपदी ने भरी सभा में दुःशासन द्वारा चीर हरण किये जाने पर पहले बहुत प्रकार से बचने के उपाय किये। अपने पाँचों पतियों की ओर ताका, मदद नहीं मिली। भीष्म पितामह, गुरु द्रोण और धृतराष्ट्र के आगे पुकार करी, परन्तु वहाँ से भी काम न बना। तब अंत में जब उसने दीन होकर प्रभु का स्मरण किया। तब भगवान कृष्ण तुरन्त उसी क्षण वस्त्रावतार के रूप में प्रकट हो गये और द्रोपदी की लाज बच गई।

इसी प्रकार पक्षी के हृदय की सच्ची पुकार सुनकर दीनदयाल प्रभु ने कैसी लीला रची? भगवान की प्रेरणा से उसी क्षण एक सर्प निकला, जिसने शिकारी को डस लिया। उससे विचलित होकर शिकारी ने जो बाण तान रखा था, वह छूट गया और पेड़ के ऊपर बैठे बाज के जा लगा। इस तरह शिकारी के तीर और बाज से क्षण भर में: पक्षी के जीवन की रक्षा हो गई।

ऐसे हैं कृपालु भगवान् ! कैसी विडम्बना है ? मनुष्य संसार से

तो प्रेम करता है और ईश्वर की यथार्थता को चुनौती देता है। इसी कारण जीव संसार रूपी मृत्युजाल में फंसा दुःख भोग रहा है।



समग्र मानवता के लिए ध्यान साधना का मूल्य

✍️ महर्षि महेश योगी

ध्यान साधना पूरी मानवता को गौरवान्वित करता है। यह समाज से तनाव, चिन्ता, व्याकुलता, अशान्ति, घृणा, क्रोध, सभी पापपूर्ण कार्य और अपराधी व्यवहारों को दूर करता है। इन्हें दूर करके वह शान्ति, सुख, समृद्धि, विवेक, सृजनता, जीवन की पूर्णता, सदाचार और सचरित्रता का जीवन में संचार करता है। यह पूरी मानवता का पुनरुत्थान करता है।

वह पहले मानवता को साधारण मानव स्तर तक लाता है। मानवता की सभी असामान्यताएं तथा सभी नाशकारी विचार दूर होते हैं। मानवता मानव अस्तित्व के उचित स्तर पर आ जाती है। मानवता का देवत्व के रूप में नव निर्माण होता है। व्यष्टि मनः समष्टि मन बन जाता है। जब व्यक्तिगत मनः सार्वभौमिक मन बन गया, तब जीवन की पूर्णता प्राप्त हो गयी। तब मानवता का देवत्व में परिवर्तन हो गया। मानवता का देवत्व के गुणों में पुनरुत्थान हो गया। भावातीत-ध्यान यही करता है।

इसको पश्चिमी देशों में लाने का केवल यही उद्देश्य है कि सभी लोगों के दुःख को दूर करके प्रत्येक के जीवन में स्वाभाविक शान्ति और आनन्द का समावेश करना। मानव के स्तर को उठाकर उन्हें संसार में देवी स्तर तक पहुंचाना, बस यही। □

सोने में गंध कहाँ है ?

✍️ आचार्य महाप्रज्ञ

एक बहुत पहुंचा हुआ त्यागी साधु था। साधना में लीन रहता था। त्याग की महिमा सर्वत्र होती है। राजा ने दर्शन किए। उसने कहा-‘महाराज ! आप मेरे महल में चलें, महारानी को दर्शन दें।’

सन्यासी बोला-‘मैं महल में नहीं जाऊंगा।’

राजा ने पूछा-‘क्यों ?’

सन्यासी ने कहा-‘वहां सोना है और सोने में गंध आती है।’

राजा बोला-‘महाराज ! आप भोले हैं। लगता है साधु जल्दी बन गए। व्यवहार को नहीं जानते हैं। सोने में कभी गंध आती है ? गंध कहाँ है ?’

सन्यासी ने कहा-‘हां, गंध आती है।’

राजा बोला-‘महाराज ! मुझे तो कोई गंध नहीं आती।’

साधु ने कहा-‘आप मेरे साथ चलें।’

राजा सन्यासी के साथ चल दिया। दोनों नगर की आरे बड़े। नगर के बाहर चमारों के घर थे। वहां चमड़ा सुखाया जा रहा था। बहुत दुर्गंध आ रही थी। राजा ने झट से रूमाल निकाला, अपना नाक बंद कर लिया। सन्यासी ने नाक बन्द नहीं किया। राजा को दुर्गंध असह्य हो गई। उसने कहा-‘महाराज ! कहां ले जाओगे ?’

सन्यासी ने चमार को बुलाकर कहा-‘अरे ! तुम्हारे पास रूमाल नहीं है ? इतनी बदबू आ रही है। नाक को दबाते नहीं हो ?’

चमार बोला-‘महाराज ! बदबू कहां आ रही है ?’

सन्यासी ने कहा-‘अरे, इतनी बदबू आ रही है।’

राजा बोला-‘महाराज ! इसको कैसे आएगी ? वह तो अपने को आएगी ।’

सन्यासी ने मुस्कराते हुए कहा-‘राजन्! तुम रोज सोने के साथ रहते हो। तुम्हें सोने में गंध नहीं आएगी, वह तो मुझे आएगी ।’

हम पदार्थ के साथ जीते हैं, इसलिए हमारी आसक्ति और मूर्च्छा बढ़ती चली जाती है। अनासक्त होना है तो पदार्थातीत चेतना का ध्यान करना होगा, परम का ध्यान करना होगा। इस संदर्भ में गीता (2.59) का गहराई से मनन करें-

विषया विनिवर्तन्ते निराहारस्य देहिनः।

रसवर्ज रसोऽप्यस्य परं दृष्ट्वा निवर्तते।।

होते विषय सब दूर हैं आहार जब जन त्यागता।

रस किन्तु रहता, ब्रह्म को कर प्राप्त वह भी भागता॥

रस का निवर्तन कब होता है? आसक्ति कब छूटती है ? मूर्च्छा कब टूटती है? आप परम को देखिए, आसक्ति टूट जाएगी।

आत्मा: बुद्धि से परे

प्रश्न हुआ-परम क्या है ? इसकी भी सुन्दर व्याख्या श्रीमद् भगवद् गीता (3.42) में उपलब्ध है।

इन्द्रियाणि पराण्याहुरिन्द्रियेभ्यः परं मनः।

मनसस्तु परा बुद्धिर्यो बुद्धेः परतस्तु सः॥

हैं श्रेष्ठ इन्द्रिय, इन्द्रियों से पार्थ ! मन मानो परे।

मन से परे फिर बुद्धि, आत्मा बुद्धि से जानो परे॥

इंद्रियां हैं। इंद्रियों से आगे है मन। मन से आगे है बुद्धि। जो बुद्धि से परे है: वह हमारा परम है-इंद्रियातीत, मनोतीत और बुद्धि से अतीत। उसे

इंद्रियों से नहीं देखा जा सकता। वह मन का विषय भी नहीं बनता, बुद्धि का विषय भी नहीं बनता। वह बनता है अतीन्द्रिय चेतना का विषय। इस प्रकार अध्यात्म की दृष्टि से गीता का अध्ययन करें तो उसमें बहुत सूत्र मिलेंगे। किन्तु मुझे लगता है कि गीता को पढ़ने वाले लोग भी गीता में जो अध्यात्म के अनुभव हैं, उन पर कम ध्यान देते हैं। □

द्वैत, अद्वैत और माया

✍ डॉ० शम्भू नाथ

सब के अन्दर विचारों का एक सागर

हर साधारण मनुष्य अपने मन में उठते हुए विचारों को अनुभव करता है। निद्रा के पश्चात् स्वप्न के विचारों को अनुभव करता है। यह दर्शाता है कि सबके अन्दर विचारों का एक सागर है। स्वप्न के समय कोई नहीं जानता कि वह स्वप्न देख रहा है। निद्रा के समय भी वह नहीं जानता: कि वह निद्रा में है। मात्र निद्रा टूटने के बाद उसे ज्ञान होता है कि स्वयं वह निद्रा के समय नहीं था और स्वप्न के समय भी नहीं था। परन्तु न रहते हुए भी निद्रा टूटने के बाद: उसे ज्ञान है कि उसे कैसी निद्रा आयी थी और स्वप्न में ये विचार आये थे। यह प्रमाणित करता है: कि निद्रा के समय अनुभव शक्ति कम थी, लेकिन शून्य नहीं थी। सारा ज्ञान (अनुभव शक्ति), चेतना में ही उपजता है। एक बात और प्रमाणित होती है कि जिस दुनिया में निद्र थी, उसी दुनिया की शक्ति के सागर में मन था। अतः उस संसार की शक्ति मन में धीरे-धीरे ऐसे पिरो रही थी: जैसे नदी में स्नान करने के लिए जब शरीर जाता है, तो उस में पानी पिरोता है। शरीर जल में स्नान करता है। मन ब्रह्मतत्त्व के उस सागर में स्नान करता है जिसमें पहुंचने के पश्चात् उसका “मैं” समाप्त हो जाता है।

ब्रह्म तत्त्व का सागर : ब्रह्म

जो चीज है और अनुभव होती है: वह उस वस्तु से स्थूल होगी,

जो है, परन्तु “मैं” को अनुभव नहीं होती। इस तरह प्रमाणित होता है: कि वह संसार जहाँ “मैं” नहीं होता वह ब्रह्मतत्त्व का सागर है और वह पूर्ण सागर: ब्रह्म है। यह न तो कोई जीव है न निर्जीव है। अर्थात् ब्रह्म तत्त्व का सागर: एक शक्ति का सागर है और इस शक्ति में: प्रकट होने की शक्ति है। इस तरह हमें ज्ञान हो जाता है: कि प्रकट होने की शक्ति ही ईश्वर (ब्रह्म) है। ब्रह्मतत्त्व निर्गुण और निराकार है। गुण और आकार तो अनुभव में आ जाते हैं। परन्तु निर्गुण और निराकार अनुभव से परे होते हैं। इस तरह यह भी प्रमाणित होता है: कि प्रकट होने की शक्ति अनुभव के क्षेत्र से परे क्षेत्र की शक्ति है। अनुभव के क्षेत्र में तो यह शक्ति अनन्त रूपों और गुणों में प्रकट हो जाती है।

ब्रह्मतत्त्व के सागर में ब्रह्मतत्त्व की लहरें

सागर का अपना एक आकार है: हर सागर की एक ऊपरी सतह होती है और दूसरा सबसे नीचे का धरातल होता है। बिना लहरों के सागर नहीं होता। ब्रह्मतत्त्व के सागर में ब्रह्मतत्त्व की लहरें होंगी: जो कि तल पर शान्त होंगी और धीरे-धीरे सतह की ओर तीव्र होती चली जायेंगी। दर्शन-शास्त्र हमें दर्शाता है, कि ब्रह्मतत्त्व में तीन गुण हैं: सत्, चित और आनन्द। गुण सत् का अर्थ है: कि वह है, अर्थात् उसका अस्तित्व हैं। अतः जिसमें ब्रह्मतत्त्व पिरो जायेगा: उसका अस्तित्व हो जायेगा। गुण: चित में ज्ञान है और आनन्द: ब्रह्म सुख का अनुभव है।

ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति कैसे हुई ?

स्वयं ब्रह्म, जो कि अनन्त है: ब्रह्मतत्त्व के सागर पर अनन्त जड़ों के रूप में प्रकट हो गया। इन जड़ों का कोई अस्तित्व नहीं है। अर्थात् ये जड़ें अचेतन हैं। सतह पर प्रकट होने से ब्रह्मतत्त्व के सागर की चेतना का सम्पर्क इन अनन्त अचेतन जड़ों से हो गया। इसे दर्शन-शास्त्र ने चेतना का अनन्त अचेतन जड़ों से विवाह दर्शाया है। इस तरह अनन्त

अचेतन: चेतन अस्तित्व में प्रकट हो गये। जिस जड़ से जीव उत्पन्न हुआ: उस जड़ का नाम मन पड़ गया और शेष अनन्त अचेतन के माध्यम से अनन्त निर्जीव, बड़ी-बड़ी शक्तियां, गुण और आकार उत्पन्न हुये। इस तरह ब्रह्माण्ड उत्पन्न हुआ।

मन में ब्रह्माण्ड को अनुभव करने की शक्ति

ब्रह्माण्ड में भ्रमण कर सके: इसके लिए हर जीव को शरीर मिला और इन शरीरों में दस इन्द्रियां स्थापित हुईं। किसी भी इन्द्रिय ने मन को कभी अनुभव नहीं किया। मन अपने को अनुभव करता है। यही प्रमाणित करता है: कि मन स्वयं इन्द्रिय जगत में नहीं आता। जैसे आज के समय में हर मनुष्य मात्र टी.वी. के चैनल के माध्यम से सारे संसार में भ्रमण कर सकता है, इसी प्रकार से मन पिण्ड में रहकर इन्द्रिय जगत का ब्रह्माण्ड अनुभव कर सकता है।

पिण्ड में दो संसार

पिण्ड में दो संसार हैं: एक विचारों का संसार जिसे “मैं” अनुभव नहीं कर सकता। वह संसार ही ब्रह्म है: निर्गुण है, निराकार है और प्रगट होने की सबसे बड़ी शक्ति है। अनन्त जड़ों के माध्यम से ब्रह्माण्ड प्रकट करने वाला है।

दूसरा संसार वह है जो “मैं” का संसार कहलाता है। अनन्त के माध्यम से जो भी प्राप्त हुआ: वह अनन्त है।

ब्रह्म एक है: अखण्ड है, अनन्त है। परन्तु ब्रह्माण्ड का फैलाव भी अनन्त है और अनन्त प्रकार के जीव, निर्जीव और शक्तियों से भरा है। इस तरह हम समझ सकते हैं: कि यह बदलने वाली दुनिया, हर क्षण बदलती है।

इस संसार का नाम द्वैत जगत क्यों पड़ा ?

यह संसार एक ब्रह्म के कारण है: और चेतन-अचेतन के

विवाह से उत्पन्न हुआ। अतः अचेतन में चेतन के गुणः चेतन पिरोने से उभर गये। सम्भावनायें मात्र दो होंगीः या चेतना बढ़ती जायेगी, या कम होती चली जायेगी। सम्भावनायें मात्र दो होने के कारणः इस संसार का नाम द्वैत जगत पड़ा।

जीव में उत्थान और पतन के कारण

जिस जीव में चेतना बढ़ती ही चली जायेगीः वह जीव ब्रह्म स्वरूप होने की ओर अग्रसर होने लगेगाः अर्थात् उसमें अखण्ड ज्ञान, अखण्ड शक्ति, अखण्ड आनन्द, अखण्ड प्रेम उभरने लगेगा। इसे जीवात्मा का उत्थानः समाज कहने लगा।

इसके विपरीत जिस जीव में चेतना घटती चली गईः ज्ञान शक्ति, आनन्द, स्वास्थ्य और प्रेम भी घटता चला जायेगा और ऐसी चेतनाओं को समाज ने उन चेतनाओं के माध्यम से जानाः जिनका पतन होने लगा।

संसार में मन ही सब कुछ

संसार में मन ही सब कुछ है। अद्वैत और द्वैत के बार्डर पर मन अचेतन है। मन में ब्रह्मतत्त्व पिरोने से जीव उत्पन्न हुआ। जीव को भी मन ही कहते हैं। आज के समाज की भाषा मेंः जीव में पिरोये हुए ब्रह्मतत्त्व की अवस्था के अनुसार जीवात्मा की अवस्था निर्धारित होगी। यदि जीवात्मा अपने में ब्रह्मतत्त्व इतना पिरो लेः कि वह ब्रह्मतत्त्व से तर-बतर हो जाये; तो जीवात्मा अर्थात् ऐसा मन ब्रह्म स्वरूप हो जायेगा। कहने का अर्थ यह है कि ऐसे मन मेंः वह प्रकट होने की शक्ति उत्पन्न हो जायेगी, जो कि स्वयं ब्रह्म में है।

ब्रह्माण्ड अर्थात् दस इन्द्रियों और बुद्धि की दुनिया नर्क हैं और पिण्ड स्वर्ग है

मन का विचरण, पिण्ड में हो या ब्रह्माण्ड मेंः मन का कर्म है।

जो मन पिण्ड में अधिक से अधिक समय तक कर्म करके ब्रह्माण्ड में कर्म करेगाः वह मन पिण्ड की शक्ति को (अर्थात् स्वर्ग की शक्ति को) नर्क में पिरोने में सफल होता जायेगा।

गीता (2.48) में कृष्ण भगवान के मुखार बिन्दु से यह दर्शाया गया हैः कि ऐसे व्यक्ति के जीवन पर से नर्क का प्रभाव कम होने लगेगा और स्वर्ग के सुख का प्रभाव जीवन में बढ़ने लगेगा। इस तरह से वह नर्क में रहकरः स्वर्ग का जीवन जीने में सफल हो जायेगाः-

योगस्थ कुरु कर्माणि

योग का अर्थ हैः मिलाप। मनुष्य का मन पिण्ड में भ्रमण कर केः पिण्ड की शक्ति (अर्थात् पिण्ड से मिलाप की शक्ति लेकर) कर्मेन्द्रियों का कर्म करे तो इन्द्रियों में स्वर्ग के सुख की ताकत पिरोयेगी और नर्क के दुःख की ताकत कम हो जायेगी। इस प्रकार कोई भी जीव पिण्ड में भ्रमण कर केः कर्म के माध्यम से अपने नरकीय जीवन के दुखों को काटने (समाप्त करने) में सफल हो सकता है। ज्यों-ज्यों मन में ब्रह्मतत्त्व पिरोयेगाः चेतना उभरेगी। चेतना उभरने से ज्ञान उभरेगा और साथ-साथ ब्रह्मतत्त्व का सुख भी उभरेगा। फलस्वरूप नरकीय (दुःखदायी) जीवन में स्वर्ग का आनन्द हावी हो जायेगा। इसके विपरीत जो जीव इन्द्रिय जगत के सुखों में लिप्त होने के कारणः हर समय मात्र इन्द्रिय जगत के कर्मों में व्यस्त रहेगाः धीरे-धीरे उनके जीवन में दुःख बढ़ेंगे।

मायावी जगत्

जब यह इन्द्रिय सुख जीव में पिरोता हैः तब दुःख के रूप में प्रकट होता है। इन्द्रिय सुख के क्षेत्र में भ्रमण करने वाले जीव को सुखदायी अनुभवः उसे भ्रमित करने वाला अनुभव है। इसीलिए इन्द्रिय जगत् के संसार को मायावी जगत कहा गया है।

मा कर अर्थ हैः जो, या का अर्थ हैः नहीं। कहने का अर्थ हैः जो हैं नहीं, परन्तु दिखता है। गलत दिखना ही अज्ञानता है।

आज के समाज में हम कुछ स्वादिष्ट भोजन करते हैं और कहते हैं कि इससे तकलीफ हो गई। स्वादिष्ट भोजन जिह्वा का सुख है। परन्तु जो सुखः दुख दे और सुख के सेवन से दुःख बढ़ जाये तो इसका अर्थ तो यही हुआ कि सुख का सेवन करने वाला व्यक्ति भ्रमित संसार में कर्म करके अपने दुखों को बढ़ा रहा है। इसीलिए सन्त तुलसीदास ने लिखा है –

**काहू न कोऊः सुख-दुख का दाता ।
निज कृत कर्मः भोग सब भ्राता ॥**

इसके पहले ही वे यह भी बता चुके हैं :-

**कर्म प्रधानः विश्व करि राखा ।
जो जस कर हींः तस फल चाखा ॥**

जीव का संसार एक ऐसा संसार है: जिस संसार में कर्म अर्थात् मन के भ्रमण से जो जैसा जीवन चाहे बना ले। चाहे पिण्ड में मन को भ्रमण कराकर या “नर्क में रहकर” स्वर्ग का जीवन व्यतीत करे। इसके विपरीत चाहे तो नर्क में कर्मेन्द्रियाँ के माध्यम से भ्रमण कर के अपने जीवन के दुःखों को बढ़ाता ही चला जाय। मनुष्य के कर्मों के आधार पर ही उसका जीवन: उसे मिलता ही जायेगा।

द्वैत जगतः उन जीवात्माओं का संसार है, जो अपूर्ण हैं और मन की इस अपूर्णता का कारण: चेतन और अचेतन का विवाह है। अपूर्ण होने के कारण: उन्हें संसार में आना आवश्यक हो गया, जहां आकर वह और कर्म करके: अपने को पूर्ण कर सके। यही द्वैत जगत है।

अपूर्ण चेतना के कारण: जीव अर्धजागृति में है। पूर्ण जागृति: मात्र पूर्ण चेतना में है। जिस प्रकार से निद्रा, स्वप्न और इन्द्रिय जगत की जागृति में रहने वाला व्यक्ति, स्वप्न को अपूर्ण जागृति मानता है: बिल्कुल उसी प्रकार से “योगस्थ कुरु कर्माणि” और इससे भी ऊपर की जागृति (या

यह कहें कि पूर्ण जागृति में रहने वाला व्यक्ति): इन्द्रिय जगत की जागृति को अर्ध निद्रा मानता है। सच यह है कि: यह अर्ध निद्रा है, और अर्ध निद्रा के कारण: इन्द्रिय जगत के सुखों में रहने वाला व्यक्ति नर्क के सुखों को बढ़ाने में व्यस्त हो जाता है। जो अत्यन्त दुखदायी हैं और इस तरह से अज्ञानता के कारण: वह जीवन में सुख बढ़ाने के बजाय अपने कर्मों से दुख बढ़ाता चला जाता है।

यही सन्त तुलसीदास की उक्त जागृति भी कहती है: क्योंकि वो तो पूण रूप से जागृत हो गये थे।

माया जाल से छुटकारा

जटिल समस्या यह है कि स्वयं भगवान कृष्ण के मुखार बिन्द से गीता (7.3) में दर्शाया गया है: कि हजारों में केवल एक व्यक्ति इस रास्ते में चलने के लिए मुड़ेगा, शेष सभी इन्द्रिय सुख के माया जाल (गलतफहमी) द्वारा भ्रमित रहेंगे। एक व्यक्ति जो इस रास्ते पर मुड़ेगा, वह धीरे-धीरे अपने जीवन को अधिक सुखदायी बनाने में अवश्य सफल होगा। हजारों में केवल एक ब्रह्मस्वरूप हो जायेगा। सभी साधक जानते हैं कि

स्वर्ग शक्ति का नरक की ओर प्रवाहित करने के कर्म को ही: ध्यान कहते हैं। ध्यान “मैं” नहीं कर सकता (अर्थात् ध्यान करना नहीं है), ध्यान केवल होना है।

आप केवल होनी में रहना सीखें। चौबीस घण्टे में एक-डेढ़ घन्टा केवल होनी में रहें। शेष समय में: जो चाहें करें। बढ़ते हुए समय के साथ-साथ आपका जीवन अधिक सुखदायी अवश्य होता जायेगा।

क्या जीवन काल में भी मोक्ष की प्राप्ति संभव है ?

समझना यह है: कि बंधन का कारण अहंकार है। ध्यान साधना के द्वारा यदि आसक्ति व अहंकार को समाप्त कर पायेंगे, तो बन्धन से भी मुक्त हो जायेंगे। यदि परिस्थितियों का प्रभाव मन पर, व मान-अपमान का प्रभाव

बुद्धि पर कम है: तो बन्धन भी कम होता जायेगा और मुक्ति मिलती जायेगी। यदि जीवन काल में अहंकार गिर जाये: तो यहां द्वैत से मुक्ति मिलेगी और मृत्यु के उपरांत आवागमन से छुटकारा हो जायेगा।



ध्यान की कला

📖 श्री सुरेन्द्र कुमार, मो. : 9416671105

ध्यान कला लम्बे समय तक हमारा साथ देती है। साक्षात जीते-जागते ब्रह्मज्ञानी गुरु के मुख से निकले हुए शब्द सीधे हमारे कड़वे मन के ऊपर चोट करते हैं। ध्यान रूपी नौका में बैठकर हम जिस विराट समुद्र में उतरेंगे उसका फिर कोई किनारा नहीं है। ध्यान रूपी नौका हमने फिर छोड़नी नहीं है। जैसे-जैसे हमारे जीवन में ध्यान बढ़ता जाएगा: वैसे-वैसे सांसारिक चीज़ों से हमारा लगाव कम होता जाएगा। सम-विषम परिस्थितियों में भी सामान्य रहने लग जाएंगे। क्योंकि ध्यान के लगातार अभ्यास से मन धीरे-धीरे मर रहा है। मन की Negative शक्ति खत्म हो रही है।

ध्यान एक ऐसी पद्धति का नाम है, जहां मन नाम की चीज़ नहीं है। जहां मन है: वहां ध्यान नहीं है। बल्कि मन का ना होना ही ध्यान है। इसलिए कहा जाता है कि करने का नाम ध्यान नहीं। हो जाने का नाम ध्यान है। मन 24 घण्टे में से पांच सैकेण्ड भी बुद्धि से अपनी पकड़ ढीली नहीं होने देता। जैसे ही पकड़ ढीली हुई: तो आत्म-साक्षात्कार होने में देर नहीं लगेगी। मन का पौषण हमेशा अन्धकार में होता है। हमारे अन्दर जो अन्धकार जन्म-जन्मान्तरों से भरा पड़ा है: वो अन्धकार ही मन की खुराक है। उस अंधकार रूपी खुराक को खत्म करने की कला का नाम ही ध्यान है। हमने मन को नहीं मारना है। मन को पौषित करने वाली

खुराक ही ध्यान के द्वारा खत्म हो जाएगी। ध्यान हमेशा गहन अन्धकार में एकान्त में शोर-शराबे से दूर करना चाहिए। हमें कम से कम एक बार में 30 मिनट ध्यान का अभ्यास करना चाहिए। जैसे ही हम ध्यान में बैठते हैं: विचार रूपी ट्रैफिक (Traffic) चलनी शुरू हो जाती है। उस विचार रूपी ट्रैफिक से डरकर बेचैन होकर हमने ध्यान से उठ नहीं जाना है। जो कुछ होता है: होने देना है। हम सारा जीवन परमात्मा को खोजने में लगा देते हैं। उस पांच अक्षरों के शब्द को खोजने में लगा देते हैं जिसका हमें पता ही नहीं है कि इन पांच अक्षरों में क्या रहस्य छिपा हुआ है। खोजा तो उस चीज को जाता है: या तो जिसको हम रखकर भूल गए हैं, या फिर कहीं खो गई है। अगर हम आज से अभी से, अपने आपको ढूंढ़ने लग जाएं तो परमात्मा रूपी शक्ति हमें ढूंढ़ने में लग जाएगी। जिसने ढूंढ़ा अपने आपको: भगवान उसे ढूंढ़ते हैं।

दो प्रकार की साधना

📖 श्री राकेश गर्ग

359, डिफेंस कालोनी, हिसार

साधना दो प्रकार की होती है :- पहली साधना को अन्तर्मुखी ध्यान साधना कहते हैं। ध्यान के लिए आंख बन्द करके एकान्त में चुपचाप बैठ जाते हैं। मन अन्दर बैठे प्रभु से मिलता है। उसकी प्रेरणा और गुणों को लेकर आनन्द से हमारा जीवन कल्याणकारी, शान्त, संतुष्ट एवं समृद्ध हो जाता है। हमारे सभी अवगुण, बुराइयां, विकार आदि प्रभु की कृपा से हट जाते हैं।

दूसरी साधना बहिर्मुखी-वैज्ञानिक होती है। इसमें मनुष्य पुस्तकें पढ़कर, उपदेश सुनकर, अच्छे-अच्छे काम करके: अपने बलबूते पर काम, क्रोध, लोभ आदि बुराइयों को छोड़ता है। वह इस प्रकार पहले नेक काम करके, फिर प्रभु साधना होगी, मानता है। पहली साधना से पहले

प्रभु को पकड़ता है। दूसरी साधना में पहले बाहर से ठीक होना है। पहला कहता है कि प्रभु के पास जाने से सब अच्छा होने लगेगा। बहिर्मुखी समझता है कि अच्छे-अच्छे काम करके ही भगवान मिलता है। **अंतर्मुखी ध्यान साधना से मनुष्य अपने अन्दर विराट प्रभु का अनुभव करता है। अपने को उस विराट, महान शक्ति का अंश अनुभव करके उसे अहंकार नहीं होता।** □

ध्यान माला

✍ श्री कुबेर प्रसाद 'गुप्त कबीर'

दोहा-12 : ध्यान बाद विश्राम कर, मन भावे कर कर्म।

ध्यान-योग अति सरल है, यही धर्म का मर्म ॥

ध्यान की प्रविधि तो यही है कि हम सुखासन से बैठकर इन्द्रियों और बुद्धि का व्यापार बन्द करने की व्यवस्था कर दें। ध्यान के समय गहरे-दबे हुए अर्थात् तम् के संस्कार उभर कर ऊपरी सतह पर आ जाते हैं और ध्यान के बाद कुछ मिनट हम पैर फैला कर लेट कर आराम करते हैं, तब वे उभरे हुए संस्कार सरलता से बाहर निकल जाते हैं। इन निकलते हुए संस्कारों के पीछे सदैव ब्रह्म की शक्ति (गुण) रहती है, जिसे मन ध्यान के समय आत्मसात कर लेता है। इसके बाद बाह्य जगत में जब हम ब्रह्म-तत्त्व को आत्मसात कर: शक्ति सम्पन्न मन के अनुकूल अर्थात् स्वभावतः या स्वाभाविक क्रिया करते हैं, तब बुद्धि में विवेक जागृत हो जाने से, वह भी उसे उचित घोषित करती है तथा प्रभु लीला-शक्ति के सहयोग से वह क्रिया भी अत्यन्त सरल हो जाती है। इस प्रकार मनमानी कर सकने की क्षमता के कारण मन आनन्दित रहता है।

श्रीमद् भगवद् गीता (2.50) अनुसार “**कर्मसु कौशलम्**”

(यह समत्व योग ही कर्मों में कुशलता है।)

कर्म की कुशलता है: अपनी आत्मा में स्थिति बनी रहे और साथ-साथ

सभी बातों का अनुभव भी होता रहे।

ध्यान: आत्मा के क्षेत्र में जाने और वहां से बाहर आने की विधि है। इस में आत्म-स्थिति स्वयंमेव बनी रहती है। □

नोट :- 1. प्रत्येक रविवार को बुधला सन्त मन्दिर नज़दीक बस स्टैण्ड, हिसार में पारिवारिक सत्संग शाम को 3 बजे से 5 बजे तक होता है। आप सभी सपरिवार सादर आमन्त्रित हैं।

2. ध्यान सम्बन्धी अपने अनुभव, लेख, आलोचना (Comments), अनुभूतियां, प्रश्नोत्तर, शंका-समाधान इत्यादि इस पते पर भेज सकते हैं :-

-सुरेश कुमार गुप्ता

1618, अर्बन एस्टेट-II,

पुष्पा कम्पलैक्स के पीछे, हिसार-125005

PRINTED MATTER